भूधर

तुम गर्वोन्नतशीर्ष स्थित हो चिर से भू पर।
वपु विराट धृतसार और दुर्गमतर भूधर।
नाम और गुण दोनों से हो अचल निरंतर।
शीतल शीर्ष विशेष किंतु है ऊष्मित अंतर।।1।।

वितत धरा संतुलन कार्य तव था अति गुरुतर।
विपुल धराधारी बन बैठे कृतमति पटुतर।
दुर्गमता से दूर कर दिए बहुशः मानव।
वृक गोमायु तरक्षु ले रहे आश्रय दानव।।2।।

नहीं सानु है तुंग मेघरोधन में सक्षम।
वह उच्चता निरर्थ न हो जो मंगल में क्षम।
वे ही नग हैं स्तुत्य धवल हिमशीतल सिरयुत।
सदानीरवाहिनी वृंद के जनक स्नेहकृत।।3।।

उन्नत सरल विशाल कोटिशः तरु जब फलप्रद।
खग मृग क्रीड़ा भूमि सशाद्वल ससर सुमनधर।
शीतल छाया युक्त कुंज कूजित मृदु अटवी।
पाती है संसार मध्य वनदेवी पदवी।।4।।

तव हरीतिमा विरल अकच शिर सवितातापित।
तो भी प्रखर अहंता से गिरि तुम अनुप्राणित।
निष्कंटकता हेतु धरा कंटकतरु अम्बर।
निज महिमा का लोकमध्य करते आडम्बर।।5।।

मात्र शिलोच्चय बिरस न पाता यहां अचलता।
भूताश्रय अक्षमा व्यर्थ है जग में दृढ़ता।
वह अलंघ्यता मोघ न कुछ अधिगत्य जहां पर।
वसु यदि गुप्त अलभ्य भूति संभाव्य कहां पर।।6।।

यदि न पड़े मुनि चरण व्यर्थ वह होता आलय।
नहीं सभी गिरि हो सकते हैं यहां हिमालय।
जहां न करते बैठ मनुज ईश्वर का चिंतन।
वहां न होता भूत मात्र का भीति निकृंतन।।7।।

सार्थक है गिरि तभी गगन में शीश उठाना।
आ जाए जब विपुलभूतगण भार उठाना।
खींच सको पीयूषोपम तुम नभ से जीवन।
सींच सको निज करुणा जल से यह जनजीवन।।8।।

तुम बस शिखर न उच्च गहन खाई मत भूलो।
मात्र तुंगता भ्रम में पर्वत! तुम मत फूलो।
गह्वर यहां असंख्य गुफाएं तिमिर पूर्ण हैं।
देखो सिकता बंधु तुम्हारा शिला चूर्ण है।।9।।

नहीं षडानन बाण न शर रेणुका तनय के।
पीड़क इतने बने क्रोंच को कारण भय के।
जितने बेधक बने शब्द नाराच तुम्हारे।
कविवर वर्धित करो न बहु परिताप हमारे।।10।।

कहें नित्य दुर्वचन आज वह सब चलता है।
विज्ञ व्यंग दुस्सह अति जिससे उर छिलता है।
तुम्हें वाग्मिता प्राप्त लोक को कुछ समझाओ।
स्वाभिमान को मान बताकर मत भरमाओ।।11।।

निज काया कण कण बिखेर मृत्तिका बनाई।
शस्य संपदा सदियों से है उगती आई।
युग युग तक निज स्नेह रूप बहु स्रोत बहाए।
आज स्वयं की दशा देखकर दृग भर आए।।12।।

निर्वसु कर निर्धनता का उपहास उड़ाना।
मौन तितिक्षा धैर्य आदि को मान बताना।
उस पर उपालंभ कविवर यह तीक्ष्ण तुम्हारा।
मर्मच्छिद है क्या कृतघ्न अब यह भव सारा।।13।।

मात्र गोत्रभिद नहीं हमारा रिपु हृतपक्षति।
कविवर सुनो हमारी मानव कृत बहुशः क्षति।
किसने हर हरीतिमा हमको किया निरंबर।
भ्रम मत पालो हम पर्वत थे सदा दिगंबर।।14।।

तिग्मरश्मि का कोप बरसता संतत हम पर।
निर्वसु हमको जान उपेक्षा करते जलधर।
छोड़ गए खगवृंद कहां वे नीड़ बनाते।
क्रमशः हुए विलीन तृषा से मृग अकुलाते।।15।।

हमको शिला समूह मात्र मानव ने जाना।
खंडित वपु कर रहे सतृष दोहन मनमाना।
पीड़ा सहते मौन विवश हम क्योंकि अचल हैं।
धरा संतुलन प्रण पर कविवर तदपि अटल हैं।।16।।

ज्ञान प्रसार हेतु हम नत सत्वर हो जाते।
रामदूत श्रम हरण हेतु गत्वर हो जाते।
विंध्य और मैनाक चरित को नर मत भूलो।
धृतशिररामचरण महेन्द्रगिरि के पग छू लो।।17।।

मंदर के सहयोग बिना क्या सागर मंथन।
था संभव, क्या रत्न प्राप्ति लक्ष्मी अभिनंदन।
किसने शिव को हाथ थमाया निज दुहिता का।
किसने धारा विकट वेग भी सुरसरिता का।।18।।

बदल गया है समय कभी देता था आश्रय।
अब आश्रय मांगता अचल दुर्गम दृढ़ निर्भय।
पर्वत हूं व्यवहार करो मुझसे मत परवत।
नग हूं अनादृत्य क्यों लगता तुम्हें उपलवत।।19।।

अनावरण से हुई हमारी काया धूसर।
क्रमशः अब तव खेत बनेंगे मानव ऊसर।
जीवन के ही बिना कल्पना कर जीवन की।
तुम्हें मूढ़ कर रहीं उड़ानें कुत्सित मन की।।20।।

निर्झर रव गुंजायमान था जो हरितालय।
भीम यंत्र ऋृंखला बनाती उसे यमालय।
शिला विखंडन जात घोररव गुंजित घाटी।
उड़ता जहां पराग रेणु बन उड़ती माटी।।21।।

अट्टालिका नहीं रोकेगी कभी जलद को।
यंत्राहूत न देख सकोगे कभी शरद को।
नही भवन गत शिला धरेगी मृदा भाव को।
बांध करेंगे दूर न जग के जलाभाव को।।22।।

कभी समझते थे हमको तुम धरा पयोधर।
परिणत फल पीताभ समुत्थित अतिशय सुंदर।
आज न मानो भूमिपृष्ठ पर उत्थित छाला।
क्या यह मेरा दोष बनी सरिता यदि नाला।।23।।

शीतल सुखद समीर न भरता यदि नव तानें।
क्या हर लेंगी ताप सुतक्षित बहु चट्टानें।
खग कलरव क्या प्रतिस्थाप्य है कोलाहल से।
सुधा न है तुलनीय कभी भी हालाहल से।।24।।

अब मत खंडित करो हमें भूधर रहने दो।
इतर भूत समुदाय अभी भूपर रहने दो।
विवश करो मत हमें कि बन जाएं ज्वालामुख।
हो न उपस्थित कहीं प्रलय नरता के सम्मुख।।25।।

वर्धित अंतःताप कोप बन मुख तक आए।
शिला वृष्टि से नगर ग्राम घर घर दब जाए।
इससे पूर्व यातना की ऋंखला हरो तुम।
तृष्णा यह दुष्पूर्य मनुज कुछ तो ठहरो तुम।।26।।

तुम आए हो आज़ सदा से मैं था भू पर ।
तुम भू-धर मत बनो मात्र जग में हम भूधर।
कल से फिर तुम नहीं रहोगे या तव निर्मिति।
नहीं त्वदीय गमन करता सूचित जग की इति।।27।।

- शिवकुमार मिश्र
अपर महाप्रबंधक/प्रशासन
वाहन निर्माणी, जबलपुर

दिनांक 15.06.2014